संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ३४

महाकवि आचार्य विद्यासागर विरचित

# चेतना के गहराव में

प्रकाशक

**जैन विद्यापीठ**

सागर (म० प्र०)

# चेतना के गहराव में

कृतिकार : महाकवि आचार्य विद्यासागर

संस्करण : २८ जून, २०१७
(आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ११००

वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

**जैन विद्यापीठ**

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

**विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स**

प्लाट नं० ४५, सेक्टर-एफ , इंडस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा

भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

# आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को शृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई–बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार–निहार कर चल पड़े घर–द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा–हमेशा के लिए भव–भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी–आध्यात्मिक–महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी॰ लिट्॰, पी–एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य

का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, आचार्य समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, आचार्य विद्यानन्दि स्वामी, आचार्य पूज्यपाद स्वामी जैसे श्रुतपारगी आचार्यों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वत्वर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्यश्री की कविताओं का एक महत्त्वपूर्ण संकलन हैं चेतना के गहराव में। यह पाँच खण्डों में विभाजित ७६ कविताओं का संग्रह है। इस काव्य संग्रह में भावों को उभारने हेतु सटीक चित्रांकन किया गया है। इसके पाँच खण्डों के नाम हैं, प्रकृति की गोद में, लहराती लहरें, चेतना के गहराव में, चेहरे के आलेख एवं जीने की विधा।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

**गुरुचरणचंचरीक**

# अनुक्रमणिका

**प्रकृति की गोद से**



**लहराती लहरें**



**चेतना के गहराव में**

# प्रथम खण्ड

## प्रकृति की गोद से

तपःपूत अक्सर प्राकृतिक श्रीशोभा के मध्य मौन रहते हुए भी प्रकृति से पल-पल साक्षात्कार करते रहते हैं। तपसी जी यदि काव्य के प्रणेता होवें तो उनके शब्दोच्चारण वह-वह कहते जाते हैं, जो-जो प्रकृति मंत्रमुग्ध हो उनसे बतियाती है। ऐसे समय लगता है कि प्रकृति की गोद में तपस्यारत तपसी जो कुछ बोल / लिख रहे हैं वे सभी अक्षर / स्वर / मात्रा / शब्द मधुर अनुगूँजें हैं-प्रकृति की गोद से निःसृत होती हुई-सी।

# नयन-नीर

प्रभु के प्रति किस में ?

इस में...

प्रीति का वास है

प्रतीति पास है

पर्याप्त है यह,

अब इसकी

नयन-ज्योति

चली भी जाय!

कोई चिन्ता नहीं,

किन्तु

कहीं ऐसा न हो,

..................कि

प्रभु-स्तुति से पूर्व

प्रभु-नुति से पूर्व

इसके

करुण-नयनों में

नीर कम पड़ जाय।

❑❑❑

# चरण-पीर

पथ और पाथेय का
परिचय क्या दूँ ?
प्रायः परिचित हैं
नियम से जो
आदेय दिखाते,
पथ अभी
भले ही दूर हो अपरिमित...!
परवाह नहीं
किन्तु
कहीं ऐसा न हो
कि
आस्था के गवाक्ष में से
गन्तव्य दिख जाने से
इसके
तरुण चरणों की
पीर कम पड़ जाय।

❑❑❑

# छुवन....!

प्रकृति- प्रमदा

प्रेम -वश

पुरुष से लिपटी

हरिताभ हँस पड़ी

प्रणय-कली

महकी गन्ध भरी

खुल-खिल पड़ी

रक्ताभ लस रही

किन्तु!

पुरुष सचेत है

वह डूबा नहीं

प्रकृति जिसमें डूबी है

पुरुष की आँखों में

हीराभ-मिश्रित

नीलाभ बस रही।

❑❑❑

# कुटिया...!
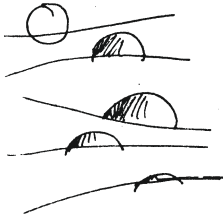
ओरी! कलि की सृष्टि
कलि से कलुषित
कलंकिनी दृष्टि!
सदाशंकिनी!
अवगुण- अंकिनी!
कभी-कभी तो
गुण का चयन किया कर!
तेरी बंकिम दृष्टि में
केवल अवगुण ही झलकते हैं क्या?
यहाँ गुण भी बिखरे हैं
तरतमता हो भले ही
ऐसा कोई जीवन नहीं है
कि
जिसमें
एक भी गुण नहीं मिलता हो
नगर-उपनगर में
पुर-गोपुर में
अभ्रंलिह प्रासाद हो
या कुटिया
जिसके पास
कम से कम एक तो
प्रवेश द्वार
होता अवश्य।

❑❑❑

# भूखी-भू

आज
आसमां
काला होने को
राजी नहीं है
मना कर रहा है
और उसमें
पूर्ण रूप से
नीलिमा आई है।
इधर
धरती में धृति नहीं है
धरती चिन्तित है भविष्य क्या
होगा?
और इसमें
पीलिमा आ गई है।
कारण बताते
लज्जा आती है
और आँखों में गीलिमा आती है
लेखनी से कहलवाता हूँ
मानव-जाति की
नियति में
ढीलिमा आई है।

❑❑❑

# चिर की आग

रस रसायन की

ललक चखन यह

पर परायन की

परख–लखन यह

कब से चल रही है

यह उपासना!! वासना की

यह चेतना मेरी

'जाया' चाहती हैं

दर्श में बदलाहट

अब काम नहीं

राम मिले......!

कितनी तपन है यह

बाहर और भीतर

ज्वालामुखी हवायें

जल–सी गईं

काया चाहती है

स्पर्श में बदलाहट

अब घाम नहीं

धाम मिले......!

❑❑❑
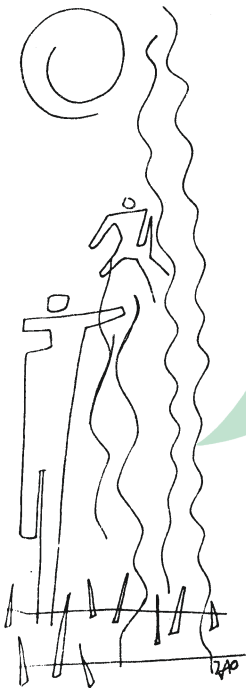
# खून की खूबी

आग का योग पाता है जब
शीतल जल भी
धीमे-धीमे
जलता-जलता......
उबलता भले ही
किन्तु वह
धधकती आग को
बुझा भी सकता है
किन्तु
मानव का खून! तुरन्त
खूब उबलता है
कुछ ही प्रतिकूलता में
काबू में नहीं आता
दूसरों को शान्त बनाना तो दूर
शान्त माहौल भी
खौलने लगता है
ज्वालामुखी-सम।

❑❑❑

# संस्कार ......।

चिरन्तन बँधा हुआ
कर्म का उदय
अन्तर में
निरन्तर चल रहा है
इसलिए
ऐसा प्रतीत हो रहा है बाहर से
कि
मन अभी शान्त नहीं हुआ है
किन्तु।
हे सन्त......!
तुम्हारा मन शान्त है
उसमें अब संसार नहीं है
संसार का शृंगार नहीं है
उसका अन्त हो गया है
चिन्ता मत करो
निश्चिन्त रहो
और चिन्तन की सहज धारा को बहने दो
बाहर कुछ भी कहने दो
वह रहने दो
झालर का बजना
यद्यपि बन्द हो गया है
किन्तु......!
ऐसा लगता है
कि
अभी झालर बज रही है
कारण यह है
कि
अभी शेष है
वह संस्कार
झालर की झनकार......!

❑❑❑

# बादल धुले
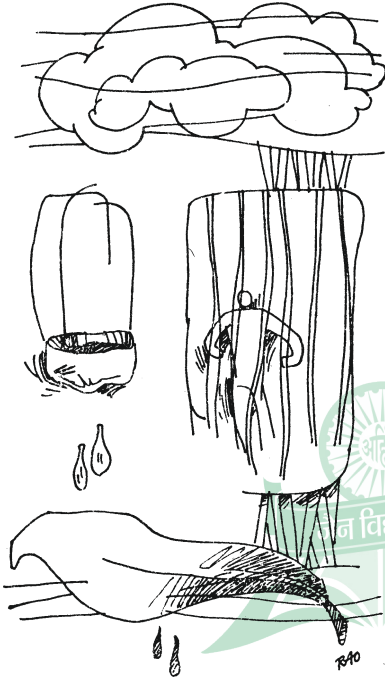
धरती को प्यास लगी है
नीर की आस जगी है
मुख–पात्र खोला है
कृत–संकल्पिता है,
कि
दाता की प्रतीक्षा नहीं करना है
दाता की विशेष समीक्षा नहीं करना है
अपनी सीमा
अपना आँगन
भूल कर भी नहीं लाँघना है
क्योंकि
पात्र की दीनता
निरभिमान दाता में
मान का आविर्भाव कराती है
पाप की पालड़ी भारी पड़ती है,
और
स्वतन्त्र स्वाभिमान पात्र में
परतन्त्रता आती है
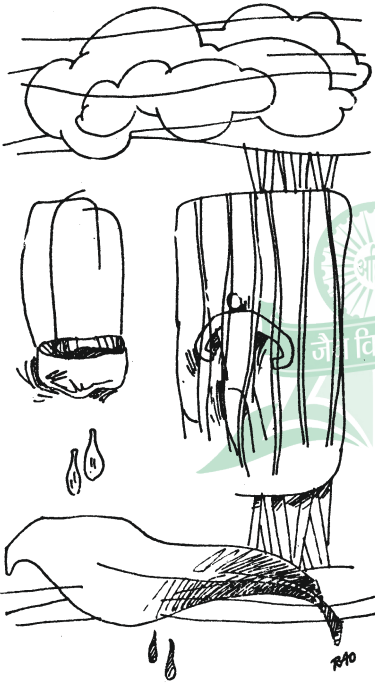
कर्त्तव्य की धरती
धीमी-धीमी नीचे खिसकती है
तब!
लटकते दोनों अधर में
तभी तो
काले काले
मेघ सघन ये
अर्जित पाप को
पुण्य में ढालने
जो सत्पात्र की गवेषणा में निरत हैं
पात्र के दर्शन पाकर
गद्-गद् हो
गड़गड़ाहट ध्वनि करते
सजल-लोचन
सावन की चौंसठ-धार
पात्र के पादप्रान्त में
प्रणिपात करते हैं
फिर तो
धरती ने बादल की कालिमा
धो डाली
अन्यथा
वर्षा के बाद
बादल-दल
विमल होते क्यों?

❑❑❑

# बोलती मुस्कान!!

धरती से फूट रहा है
नवजात है
और पौधा
धरती से पूछ रहा है
कि
यह आसमान को कब छूयेगा
छू..... सकेगा क्या नहीं?
तूने पकड़ा है
गोद में ले रखा है इसे
छोड़ दे........ ।
इसका विकास रुका है
ओ!...... माँ.......!
माँ की मुस्कान बोलती है
भावना फलीभूत हो बेटा......!
आस पूरी हो।
किन्तु
आसमान को छूना........।
आसान नहीं है
मेरे अन्दर उतर कर
जब छूयेगा
गहन गहराइयाँ
तब...... कहीं...... संभव हो
आसमान को छूना
आसान नहीं है।

❑❑❑
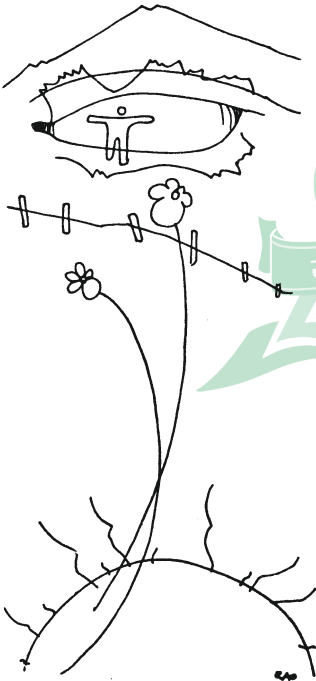
# याद आती, कल की छबि
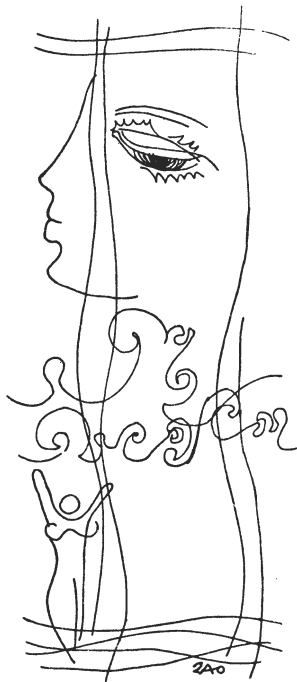
ओरी! कलसी
कहाँ दीख रही है तू।
कल सी........
केवल आज कर रही है
कल की
नकल-सी
तू रही न, कल-सी
कल कमनीयता कहाँ है वह
तेरे गालों पर
लगता है
अधरों की वह
मधुरिम-सुधा
कहीं गई है..........
..........निकल-सी
अक्ल के अभाव में
पड़ी है काया
कला-हीन
विकल-सी.......।
छोटी-सी ले
शकल-सी।

❑❑❑

# सो जाने दो
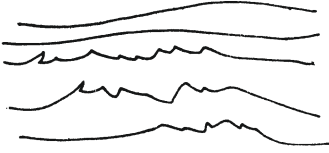
ओरी! ललित लीलावती
चलित-शीलावती
भ्रमित चेतना!
जब से तेरा
क्रीड़ास्थल
बाहर से भीतर आ बना है
तब से
पुरुष की पीड़ा
और घनीभूत हुई है
मानो मस्तिष्क में
काट रहा हो
पड़ा पड़ा एक कीड़ा
इसलिए निवेदन है
अब पुरुष को
सानन्द अनन्तकाल तक
सो जाने दो।
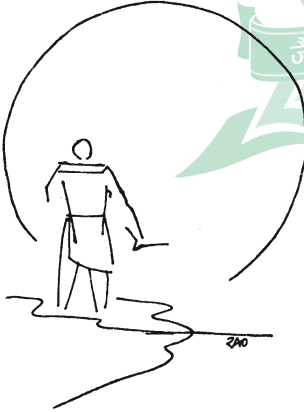
# उषा में नशा
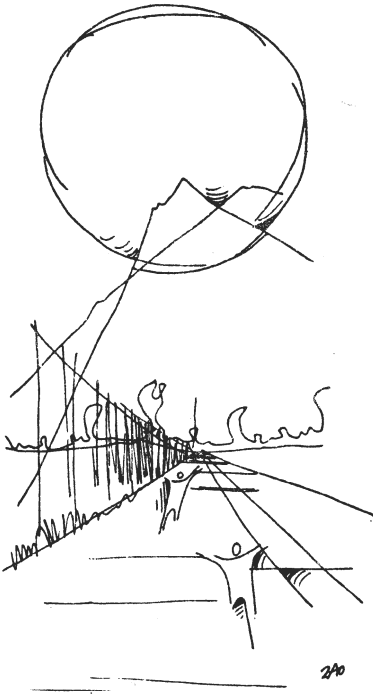
उषाकाल में

उतावली से

तृषा काय की

बिना बुझाये

कहाँ भाग रहा है तू?

मुझे पूछते हो तुम......!

उषा में नशा करने वालो.........!

निशा में मृषा चरने वालो........!

यह रहस्य अज्ञात होना

दशा पागल की है

दिशा चाहते हो

पाना चाहते हो

सही दशा वह।

जरा सुनो!

स्वयं यह

उषा भाग रही है

जिसके पीछे-पीछे

निशा जाग रही है

जिसका दर्शन.....

'यह' नहीं चाहता अब......।

❑❑❑

# विकल्प-पंछी

चिर से छाई
तामसता की
घनी निशा वह
महा भयावह
पीठ दिखाती
भाग रही है।
जाग रही है
शनैः शनैः सो
स्वर्णाभा-सी
सौम्य सुन्दरा
काम्य मधुरिमा
साम्य अरुणिमा
ध्रुव की ओर
बढ़ी जा रही
बढ़ी जा रही..... ।
शनैः शनैः बस।
शैल-समुन्नत
चढ़ी जा रही
चढ़ी जा रही..... ।
तेज ध्यान में
तेज ज्ञान में
चरम वेग से
ढली जा रही
ढली जा रही..... ।
स्वैर-विहारी
विकल्प-पंछी
निजी-निजी उन
नीड़ों में आ
नयन मूँद कर
शान्त हुए हैं
विश्रान्त हुए।

दूर-दूर तक
फैली छाया
सिमिट-सिमिट कर
चरणों में आ
चरण-वन्दना
करी जा रही
करी जा रही..... ।
मौन-भाव को
पूर्ण गौण कर
मुक्त कण्ठ से
मुक्त शैव स्तुति
पढ़ी जा रही
पढ़ी जा रही.....।

सौम्य सुगन्धित
फुल्लित पुष्पित
भीगे भावों
श्रद्धांजलियाँ
चढ़ी जा रहीं
चढ़ी जा रहीं..... ।
अश्रुतपूर्वा
आज भाग्य की
धन्य धन्यतम
घड़ी आ रही
घड़ी आ रही..... ।
ललित छबीली
परम सजीली
दृष्टि सम्पदा
निज की निज में
गड़ी जा रही
गड़ी जा रही..... ।

❑❑❑

## खण्ड दो
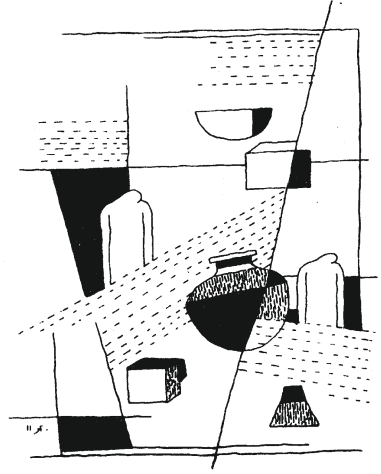
# लहराती लहरें

सरिताएँ अपने स्व को समेटकर अर्पित कर देती हैं सागर के चरणों में। फलतः सागर की हर लहर में एक लहर सरिता की भी समाई हुई होती है। सागरों की लहरें ऊँचाई तक जाकर चन्द्रमा को छू लेने का सुन्दर उपक्रम करती हैं। नदी का समर्पण यहीं सार्थक होता है जब उसकी सामान्य लहर समुद्र की पर्वतवत् लहर के साथ उच्चता की ओर होती है। इस खण्ड में दी गई काव्य-सरिता की लहरें भी मुनि के मानस से उठकर अध्यात्म की ऊँचाइयाँ स्पर्श करती हैं।

# भोर की ओर

कब से आ रहा हूँ
अपार सागर में
तैरता तैरता
हाथ भर आये हैं
श्लथ!
नैर्बल्य की अनुभूति
अब ओर नहीं.....
..... छोर मिले!!
चारों ओर......
..... भ्रमर-तिमिर
फैला है
फैलता जा रहा है
चरण चल रहे
साथ आस्था है
साफ रास्ता है
पर!
धृति कहती है
अब घोर नहीं
..... भोर मिले!!!

❑❑❑

# तरल तरंग

कुछ अतीत में
बुलाती है मति को
और सहसा
उतावली-सी
ढुलक आती है स्मृति
संयत-मति में
विस्मृता मृता भी
अमृता-सी कुछ.....!
और शान्त-सरवर
लहरदार हो उठता है
मौन-परिसर
तरल-दार हो उठता है
पल भर के लिए
सरस-स्वाद-संवेदन
सरल-सार! सो लुटता है
और बदले में.....!
गरल-दार हो उठता है!!

❑❑❑

# क्षणिकायें.......!

हम तट पर ठहरे
आ रही हैं हमारे
स्वागत के लिए
..... साथ लिए
हास्य-मुखी मालायें
लहरों पर लहरें
गरदन झुकी हमारी
झुकी ही रह गई
मन की आस मन में
रुकी ही रह गई
पता नहीं चला
कहाँ वह गई
पल भर में।
निडर होकर हम भी
खतरे से खतरे
गहरे से गहरे
पानी में
उतरे..... उतरते ही गये
और हमने पायी
चारों ओर जलीय सत्ता.....!
धीमी-धीमी श्वास भरती
हमें ताक रही चाव से
वह हमें रुचती नहीं
और हम
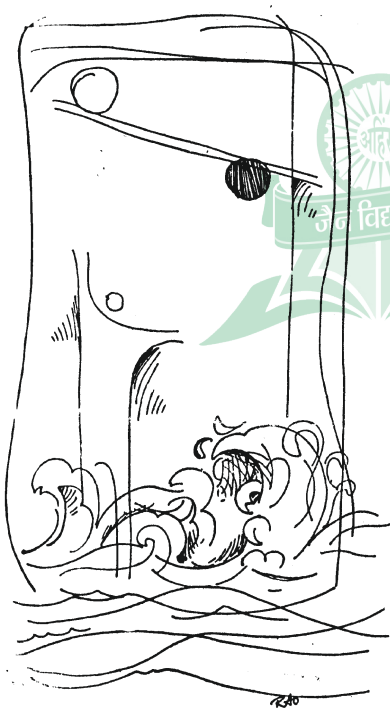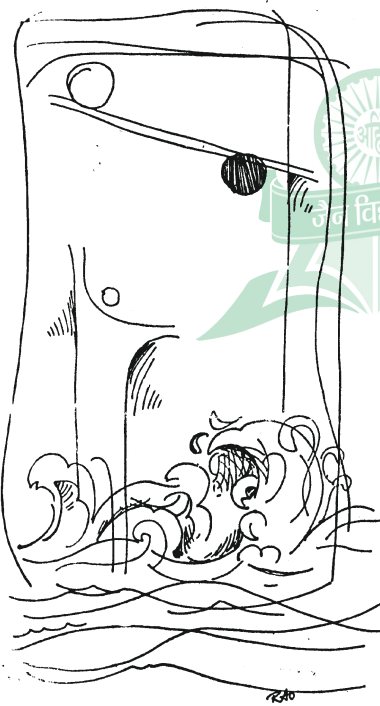
खाली हाथ लौटते-लौटते
यकायक सुनते हैं
कुछ सूक्तियाँ
कि
प्रकृति को मत पकड़ो
पर! परखो उसे
वे क्षणिकायें हैं
पकड़ में नहीं आतीं
भ्रम-विभ्रम की जनिकायें हैं,
तुम पुरुष हो, पुरुषार्थ करो
कभी न होना
किसी से प्रभावित
भावित सत् से होना 'जो है'
इसी विधि से कई पुरुष विगत में
उस पार उतरे हैं
और निराशता के बदले आज
गहन गंभीरता से
भर भर..... भरे जा रहे
हमारे ये चेहरे।

❑❑❑

# सागर तट

अज्ञात पुरुष
सागर तट पर
निर्निमेष!
निहार रहा है
वस्तु-स्वरूप
रूप लावण्य
ज्ञात करना चाह रहा है
और..... वह..... स्वयं
उधर से.....।
ठहर ठहर कर
गहर गहर कर
अपार सागर
रहस्यमय गाथा
गाता..... गाता
जा रहा है..... जा रहा है
लहर लहर चुन
तट तक लाकर
लौट रहा है.....लौट रहा है
लहरों को मुड़कर कहाँ निहारता है?
कब निहारा?
लहर लहर हैं
नहीं नहर हैं
नहरों में लहर हैं
लहरों में नहर नहीं
लहर जहर हैं

कहाँ खबर है?
किसे खबर है?
उसी जहर से
अपना गागर
भरता जाता.....भरता जाता
यह संसार!
प्रहर प्रहर पर
मरता जाता, मरता जाता
यह संसार?
दु:ख से पीड़ित
आह! भरता
मैं हूँ शाश्वत सत्ता
अविनश्वर जल का आकार।
पर
प्राय: अज्ञात।
मेरा ज्ञात होना ही
मोक्ष है! अक्षय.....
मोह का क्षय है।
अब तो ज्ञात कर ले
कम से कम
अपने पर
महर महर कर ले
हे अज्ञात पुरुष!
अपने पर
महर महर कर ले।

❑❑❑

# छले छाँव में

काया की नाव में पले हैं
माया की छाँव में छले हैं
हम तो..... निरे
अनजान ठहरे
इतने विचार
कहाँ हों गहरे
नहरों से पूछें
या लहरों से
कहाँ से आती
कहाँ जाती
......ये लहरें?
लहरों पर लहरें हैं
क्या? लहरों में लहरें।

❑❑❑

# पीयूष भरी आँखें

अपरिचित होकर भी
परिचित-सी लगती है
अतल सागर-सत्ता से निकली
    इधर.....
मेरी ओर एक
सजीव लहर आ रही है
हर क्षण, हर पल
अश्रुत-पूर्व
श्रुति-मधुर गीत
गहर गहर कर गा रही है
वासना की नहीं
उपासना की रूपवती मूर्ति
मेरे लिए
पीयूष भरी
आँखें लिए
जहर नहीं
महर ला रही है।
देखो ना!
मोह मेघ की महा घटायें
दुर्वार घूँघट
पूरी शक्ति लगा
चीरती-चीरती
चिदानन्दिनी
शरद-चाँदनी
नजर आ रही है।

❑❑❑

## खण्ड तीन
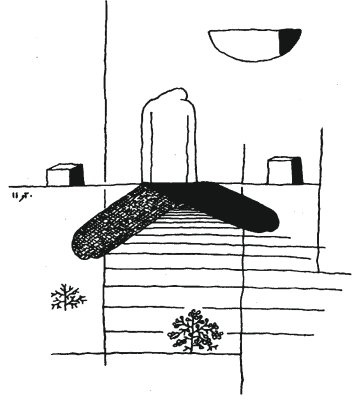
# चेतना के गहराव में

जैसा शीर्षक से ध्वनित होता है कि रचना यहाँ चेतना की गहराई से की गई है–ऐसा नहीं है; वह तो हर खण्ड में गहराई से ही लिखी गयी है। यहाँ 'चेतना के गहराव में' शीर्षक उस चेतना और उस गहराई का ध्वनि-संकेत कर रहा है, जो पाठकों के पास होकर भी नहीं है। पाठक सतही दृष्टि न डालकर चेतना की गहराई तक देखें-बांचें / गुनें-संकेत यह है। कविताएँ तो उस गहराई को स्पर्श करने में समर्थ हैं ही।

# कब भूलूँ सब?

स्वर्गीय भुक्ति नहीं
पार्थिव शक्ति नहीं
ऐसी एक युक्ति चाहिए
बार बार ही नहीं
एक बार भी अब!
बाहर नहीं आ पाऊँ
निशि दिन रमण करूँ
अपने में
द्वैत की नहीं
अद्वैत की भुक्ति चाहिए
आभरण से
आवरण से
चिरकाल तक
मुक्ति चाहिए
ओ! परम सत्ता!
अनन्तशक्ति लिए
निगूढ़ में बैठी
विलम्ब नहीं अब
अविलम्ब!
निरी निरावरण की
व्यक्ति चाहिए
भावी भटकन की
कांक्षायें कुण्ठायें
डाकिनी सम्मुख न आयें
विगत वनी में रहती
पिशाचिनी का
मन में स्मरण नहीं आए
स्मरण शक्ति नहीं
विस्मरण की
शक्ति चाहिए।

❑❑❑

# स्वयं वरण......!
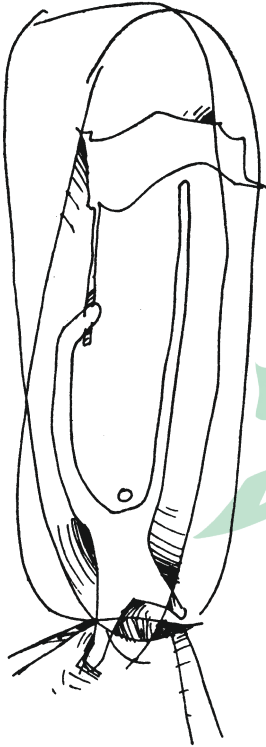
तू तो अपना ही गीत
गुनगुनाता रहता है
रे! स्वैर-विहारी-मन
जरा सुन.....!
संयम का बन्धन
बन्धन नहीं है
वरन......।
अबन्ध दशा का
अमन्द यशा का
अभिनन्दन-वन्दन है
अन्यथा
मुक्तिरमा वह
मोहित/सम्मोहित हो
उपेक्षित कर इतरों को
संयत को ही
क्यों करती है
स्वयं वरण.....।

❑❑❑

# तुम कैसे पागल हो ?
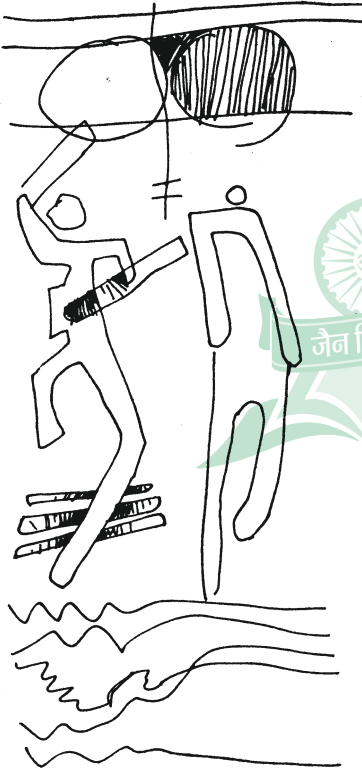
रेत / रेतिल से नहीं
रे! तिल से
तेल निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से
नीर, मंथन से नहीं
विनीत–नवनीत
क्षीर मंथन से
निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से।
ये सब नीतियाँ
सबको ज्ञात हैं
किन्तु हित क्या है?
अहित क्या है?
हित किस में निहित है
कहाँ ज्ञात है? किसे ज्ञात है?
मानो ज्ञात भी हो तुम्हें
शाब्दिक मात्र.....।
अन्यथा
अहित पंथ के पथिक
कैसे बन रहे हो तुम!
निज को तज
जड़ का मंथन करते हो
तुम कैसे पागल हो?
तुम कैसे 'पाग' लहो।

❑❑❑

# आँखों में धूल.....!

ज्ञान ही दुःख का

........मूल है,

ज्ञान ही भव का

.....कूल है।

राग सहित सो

प्रतिकूल है,

राग रहित सो

अनुकूल है।

चुन चुन इनमें

..... समुचित तू

मत चुन अनुचित

भूल है।

सब शास्त्रों का

सार यही

समता बिन सब

धूल है।

❑❑❑

# पता तू बता.....!

उस सत्ता का

किस तरह

अतिशय बता दूँ

परिचय पता दूँ

आँखों में

काजल-काली

करुणाई

छलक आई है

कुछ सिखा रही है

चेतन की तुम

पहचान करो.....!

अधरों में

प्राँजल-लाली

अरुणाई

झलक आई है

कुछ दिखा रही है

समता का नित

अनुपान करो.....!

गालों में
मांसल वाली
तरुणाई
ढुलक आई है
कुछ बता रही है
समुचित बल का
बलिदान करो .....!

बालों में
अलिगुण-हरिणी
शामल-वाली
(निपुणाई) कुटिलाई
भनक आई है
कुछ सुना रही है
काया का मत
सम्मान करो.....!
चरणों में
सादर-आली
चरणाई
पुलक आई है
गुनगुना रही है
पूरा चलकर
विश्राम करो.....!

❑❑❑

# सजीव-गन्ध....!
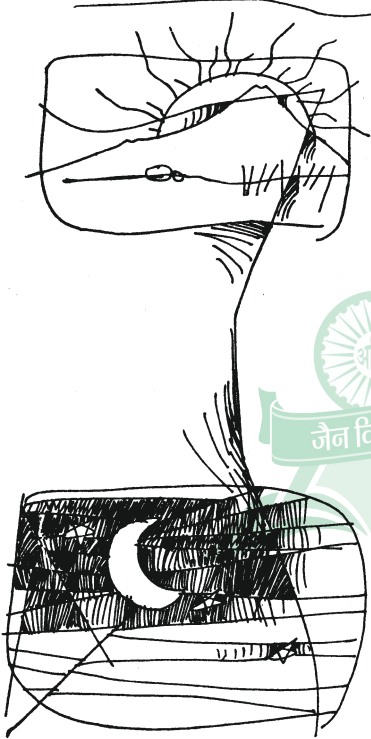
वासना का विकास
मोह है।
करुणा का विकास
मोक्ष है।
एक जीवन को जलाती है
अंगार है।
एक जीवन को जिलाती है
शृंगार है।
वासना की जीवन-परिधि
अचेतन, तन है
करुणा निरवधि है
जिसका केन्द्र
संवेदनधर्मा चेतन है
करुणा की कर्णिका से
अविकल झरती है
समता की सौरभ-सुगन्ध!
कौन कहता है
कि
करुणा से
वासना का संबंध है
वह अंध ही नहीं
मदान्ध होगा कहीं.....।

❑❑❑

# चितकबरा....।

प्रकृति के प्यार ने

रंगीन राग ने

अरूपी पुरुष को

चिदम्बर को

न केवल.......

.....पापी पाखण्डी

और रूपी बनाया है

परन्तु

पुरुष की परख करना भी

कठिन हो गया है आज!

बहुरूपी बनाया है

चितकबरा

बेशक.....!

❑❑❑

# पथ पूर्ण हुआ....
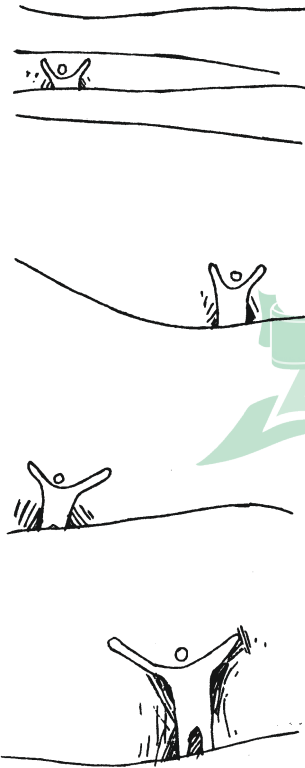
वही अधिष्ठान है

सुख का

मृदु नवनीत

जिसका पुनः

मंथन नहीं है,

वही विज्ञान है

ज्ञान........ है

निज रीत

जिसका पुनः

कथन नहीं है

वही उत्थान है

..... थान है

प्रिय संगीत

जिसका पुनः

पतन नहीं है।

❑❑❑

# चख जरा.....

शाश्वत- निधि का

भास्वत-विधि का

..... धाम हो

राम अभिराम हो

क्यों बना तू!

रावण सम

आठों याम

दीन-हीन

पाप-प्रवीण

'है' उसे

बस लख जरा

बहुत दूर जाकर

चेतना में

लीन हो

सुधा-पीयूष

बस! चख जरा।

❑❑❑

# हो जाने दो
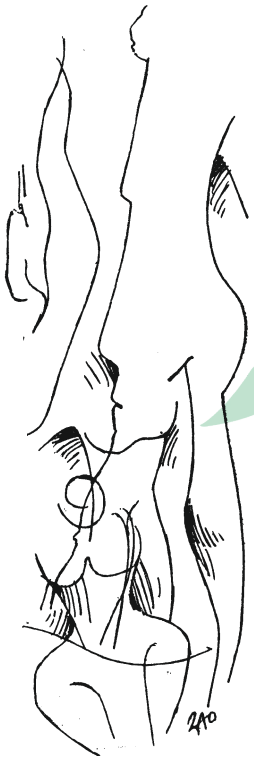
सत्ता पलट तो गई

भोग का वियोग हुआ

योग का संयोग हुआ

किन्तु उपयोग का!

उपयोग कहाँ हुआ?

भोक्ता पुरुष ने

उपयोग का उपयोग नहीं किया

मात्र परिधि पर.....

परिणाम हुआ है बस!

अभी केन्द्र में

सूम्-साम है, शाम है

हे! घनशाम तुम-सा अनन्त

इसे भी

हो जाने दो..... ।

❑❑❑

# खो जाने दो
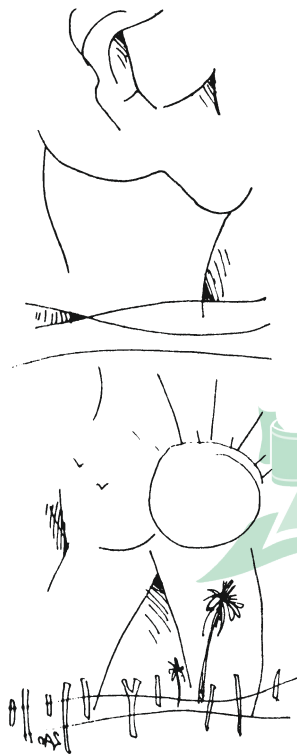
अरी! वासना
यथानाम तथाकाम है तेरा
तुझमें सुख का
निवास। वास ना!
तुझमें गहराई है कहाँ?
और मैं
गहराई में उतरने का
हामी हूँ
चंचल अंचल में
केवल लहराई है
तेरे आलिंगन में
मोहन इंगन में
सुख की गन्ध तक नहीं
मात्र सुख की वसना है
जो ओढ़ रखी है तूने
जिसमें सारी माया ढकी है
इसलिए इसे
अपनी उपासना कीड्ड
अनन्त सत्ता में
खो जाने दो
ओ! वासना!

❑❑❑

# मेरा वतन....!

यह जो तन है
मेरा वतन नहीं है
तन का पतन
मेरा पतन नहीं है
प्रकृति का आयतन है,
जन-मन-हारक नर्तन
परिवर्तन.....वर्तन
अचेतन है
फिर, इसका क्यों हो
गीत..... गान..... कीर्तन?
इतना तनातन
स्थायी बनाने का
और यतन
सब का स्वभाव / शील है
कभी उत्थान, कभी पतन
मैं प्रकृति से चेतन हूँ
प्रकाश-पुंज रतन हूँ
सनातन हो नित-नूतन
ज्ञान-गुण का केतन मेरा वतन है
वेदन-संवेदन अनन्त वेतन है
इसलिए मैं
बे-तन हूँ।

❑❑❑
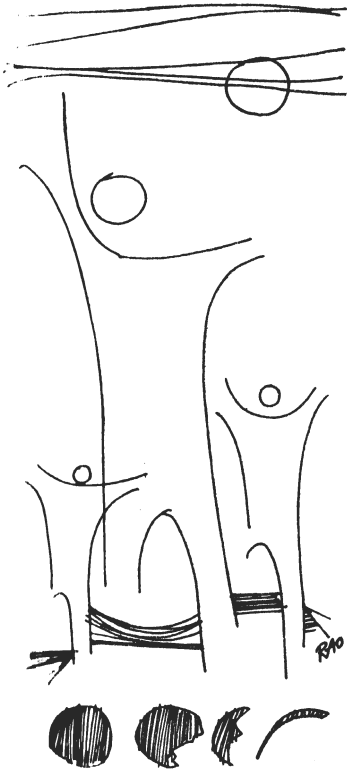
# नरम में न-रम

अरे! मन

तू रमना चाहता है

श्रमण में रम

चरम-चमन में रम

सदा-सदा के लिए

परम-नमन में रम

चरम में, चरम सुख कहाँ?

इसलिए अब

स्वप्न में भी भूलकर

नरम-नरम में

न.....रम! न.....रम!!

❑❑❑

# खरा सो मेरा

आम तौर से
पके आम की यही पहचान होती है
हाथ के छुवन से
मृदुता का अनुभव
फूटती पीतिमा
तैर आती नयनों में।
फूलसमान नासा फूलती है
सुगन्धसेवन से।
फिर!
रसना चाहती है रस चखना
मुख में पानी छूटता है
तब वह क्षुधित का
प्रिय भोजन बनता है
यही धर्मात्मा की प्रथम पहचान है,
मेरा सो खरा नहीं
खरा सो मेरा
वाणी में मृदुता
तन-मन में ऋजुता
नम्रता की मूर्ति
तभी तो
भव से प्राणी छूटता है
मुक्ति उसे वरना चाहती है
और वह उसका
प्रेम-भाजन बनता है।

❑❑❑
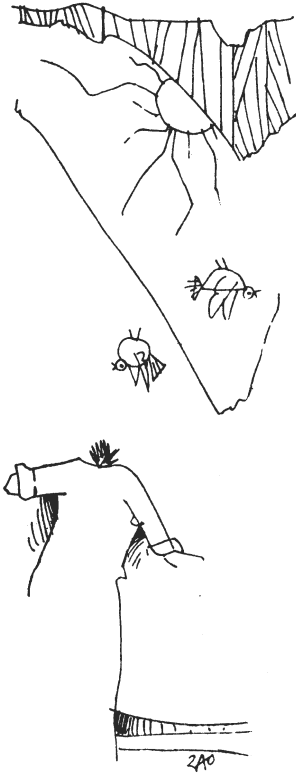
# स्वयं का स्त्रष्टा, मैं

बाहर यह

जो कुछ दीख रहा है

'सो' मैं नहीं हूँ

और वह

मेरा भी नहीं है

ये आँखें

मुझे देख नहीं सकतीं

मुझमें देखने की शक्ति है

उसी का मैं स्त्रष्टा हूँ,

सभी का मैं द्रष्टा हूँ।

❑❑❑

# समता....!

भुक्ति की ही नहीं

मुक्ति की भी

चाह नहीं है

इस घट में,

वाह-वाह की

परवाह नहीं है

प्रशंसा के क्षण में

दाह के प्रवाह में अवगाह करूँ

पर! आह की तरंग भी

कभी न उठे

इस घट में......संकट में

इसके अंग-अंग में

रग-रग में

विश्व का तामस आ

भर जाय

किन्तु विलोम-भाव से

यानी!

ता....म स--स..... म.....ता।

❑❑❑

# नासा पर आस.....!!

ऐसी ही कुछ

निचली निशा-सी!

कुछ उछली उषा-सी

पल- आयुवालीं

चल वायुवालीं

पर्यायें ......ये.....

आती नहीं पकड़ में

इसलिए

अब दृष्टि

नासा पर नहीं

अविनाशा पर धरूँ

अतीत में

तृष्णा की फिसलन घाटियों में

कई बार

यह फिसला मन

इसलिए

अब दृष्टि

आसा पर नहीं

नासा पर धरूँ।

❑❑❑

# प्यास, पराग की....!

ऊर्ध्वमुखी हो
ऊर्ध्व उठा है इतना
कि जिसे
अशन-वसन की
ललन-मिलन की
परस-हसन की
और
प्रभु-पद दर्शन की तक
इच्छा नहीं शेष.......!
गुण-सुरभि से सुरभित
फुल्लित-फूल-परागी
कहाँ है वह वीतरागी
कहीं हो
उसे हो नमन
पराग प्यासा
अलि बन रागी।

❑❑❑

# वसना......!

साधित हो

एक आसन से

चंचल योग

अचल होता है।

शोधित हो

एक अशन से

समल भी उपयोग

अमल होता है।

किन्तु

सस्ता हो या कीमती

एक भी वसन से

केवल योग ही नहीं

उपयोग भी

विकल होता है

विकृत होता है।

❑❑❑

# कम्पन, कदम में
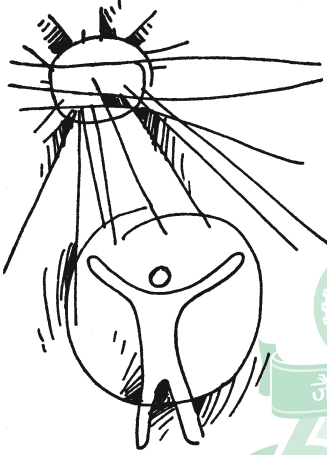
नसैनी पर
चढ़ते दम
आसानी से
सीढ़ी से सीढ़ी
चढ़ता जाता है यह
शुद्ध शून्य को
दृष्टि छूती है तब..... ।
और निर्निमेष
नीलिमा का दर्शन
लोम-हर्षन....।
मन में
दृढ़ता लाता है
किन्तु
उतरते दम
एकदम
दम घुटता है
मात्र शेष
चमकीली दर्शन होता है तब
आँखें मुँदती हैं
भय बढ़ता जाता है
भीतरी बल
कम पड़ता जाता है
और कदम..... काँपता
सीढ़ी पर नहीं
शून्य में पड़ता है।

❑❑❑

# पानी कौन भरे?

इष्टानिष्ट के

योगायोग में

श्रमण का मन

अनुकूलता का

हर्ष का

प्रतिकूलता का

विषाद का

यदि अनुभव नहीं करता

तब यह नियोग है कि

उसी के यहाँ

प्रतिदिन पानी भरता है

और प्राँगण मैं

झाड़ू लगाता है 'योग'

और

विराग की वेदी पर

आसीन होता है

शुचि-उपयोग

भोक्ता पुरुष.....!

❑❑❑

# मिलन नहीं, मिला लो!
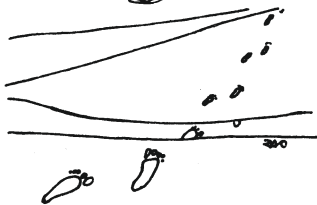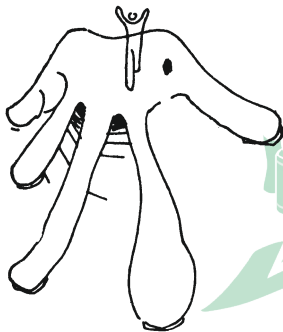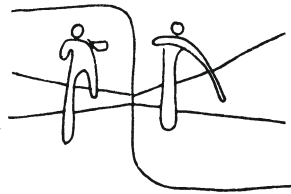
काया के मिलन से
माया के छलन से
ऊब गया है यह
भटकता-भटकता
विपरीत दिशा में
खूब गया है यह
सहचर हैं बहुत सारे
पर! कैसे लूँ
सहयोग उनसे
अंधों से कंधों का सहारा
मिल सकता है
किन्तु
पथ का दर्शन प्रदर्शन संभव नहीं है
यह भी अंधा है
इसे आँख मत दो-भले ही
मत दो प्रकाश
किन्तु
हस्तावलम्बन तो दो!
इसे ऊपर उठा लो गर्त से
और मिलन नहीं
अपने आलोक में मिला लो
हे सब द्वन्द्वों से अतीत!
अजित! अभीत!

❑❑❑

# सन्धि, अंधि से

इस बात को स्वीकारना होगा
कि
आँख के पास
श्रद्धा नहीं होती है
क्योंकि
जब कुछ नहीं दिखता एकान्त में
आँखें भय से कांपती हैं,
और!
श्रद्धा!
अंधी होती है,
किन्तु
श्रद्धा के पास
उदार-तर उर होती है
जिसमें मधुरिम
सुगन्धि होती है
प्रभु का नाम जपती है,
तभी तो
सहज रूप से
अज्ञेय किन्तु
श्रद्धेय प्रभु से
सन्धि होती है
श्रद्धा! अंधी होती है।

❑❑❑

# आस अबुझ

एक हाथ में दीया है
एक हाथ की ओट दिया
हवा से बुझ न पाये,
अपना श्वाँस भी
बाधक बना है आज,
टिमटिमाता जीवित है
जीवन-खेल
स्वल्प बचा है
दीया में तेल
तेल से बाती का सम्बन्ध भी
लगभग टूट चुका है,
जलती-जलती
बाती के मुख पर
जम चुका है
कालुष कालिख मैल,
श्वाँस क्षीण है
दास दीन है
किन्तु आस अबुझ
नित-नवीन
प्रभु-दर्शन की
कब हो मेल
कब हो मेल.....?

❑❑❑

# कामना....!

सन्तों से यह

सूत्र मिला है

कि

मात्र

बाहरी उद्यमहीनता ही नहीं!

अपितु

मन का गुलाम-मानव की

जो काय-रता कामवृत्ति है

वही

सही मायने में

भीतरी कायरता है।

❑❑❑

# भींगे पंख

सूरज सर पर
कसकर तप रहा है
मैं निःसंग हूँ.....।
आसीन हूँ
सुखासन पर
ललाट तल से
शनैः शनैः
सरकती–सरकती
भृकुटियों से गुजरती
नासाग्र पर आ
पल–भर टिकी
गिरती है
स्वेद की बूँद.....।
वायुयान–गतिवाली
स्वच्छन्द उड़ने वाली
मक्षिका के पंख पर......।
और वह मक्षिका
भींगे पंख।
उड़ने की इच्छा रखती
पर! उड़ ना पाती
धरती से ऊपर
उठ ना पाती
यह सत्य है
कि
रागादिक की चिकनाहट
और पर का संपर्क
परतंत्र का
प्रारूप है.....।

❑❑❑
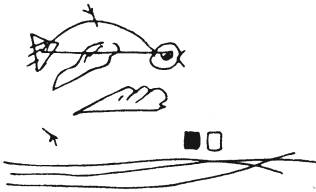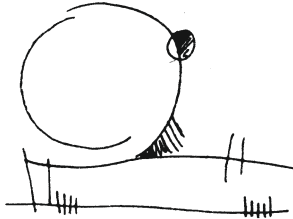
# हँसीली सत्ता!!

यह एक

नदी का प्रवाह रहा है

काल का प्रवाह

बह रहा है

और बहता! बहता!!

कह रहा!!!

जीव या अजीव का

यह जीवन

पल-पल इसी प्रवाह में

बह रहा, बहता जा रहा है

यहाँ पर

कोई भी स्थिर-ध्रुव-चिर....।

न रहा, न रहेगा, न..... ही...

रह रहा.....।

बहाव, बहना ही ध्रुव.....।

रह रहा यहाँ

सत्ता का यही

रहस रहा..........विहँस रहा।

❑❑❑

## खण्ड चार
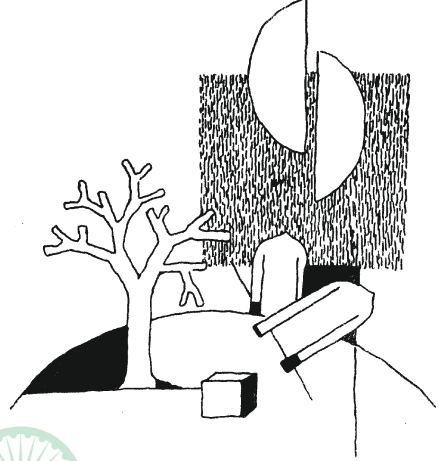
# चेहरे के आलेख

व्यक्ति अपने हृदय में जो शब्द / शब्दार्थ संजोता है उसकी झलक उसके चेहरे के रूप-पटल पर अनायास अंकित हो जाती है। यहाँ संकलित काव्य-बिन्दुओं को पढ़ते हुए चेहरे पर कोई रेखा खिंच पड़े तो पाठक इसे क्या कहेगा-चेहरे के आलेख। आइए पढ़ें हम अपने चेहरे के आलेख।

# चुनाव.....!

डूबता हुआ विश्व
पा जाये
कूल किनारा,
और एक
तरण-तारण
नाव मिली प्रभु से
उस पर कौन-कौन आरूढ़ हुआ?
प्रभु जानते हैं
और अपना-अपना मन!
पता नहीं
आज वह नाव
जीवित है क्या? नहीं
किन्तु नाव की रक्षा हो
एतदर्थ
एक परियोजना हुई
और वह जीवित है
चुनाव.......।

❑❑❑
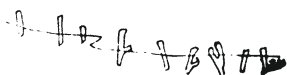
# सत्य, भीड़ में.....!

कहाँ क्या था विगत में

......ज्ञात नहीं

अनागत की गात भी

..... अज्ञात ही

आगत की बात है

अनुकरण की नहीं

जहाँ तक सत्य की बात है

देश-विदेश में.....भारत में भी

सत्य का स्वागत है

आबालवृद्धों-प्रबुद्धों से

किन्तु

खेद इतना ही है

कि

सत्य का यह स्वागत

बहुमत पर

आधारित है।

❑❑❑
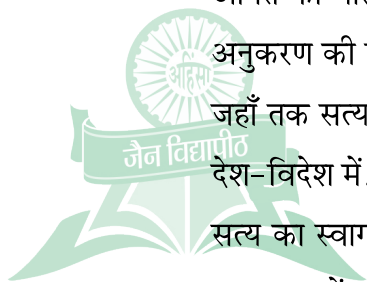
# पूज्य, पूजक बना

यह सत–युग नहीं है
कलि–युग है,
भीतर ही भीतर
अहं को रस मिलता है
आज! लक्ष्मी का हाथ
ऊपर उठा है
अभय बाँट रहा है
परसाद के रूप में।
और नीचे है
जिसके चरणों में
शरण की अभिलाष, ले
लजीली–सी
लचीली–सी
नत–नयना
गत–वयना
सती सरस्वती
प्रणिपात के रूप में।
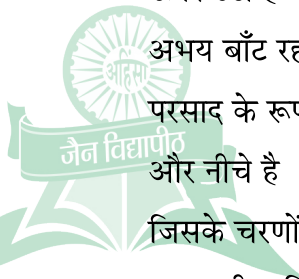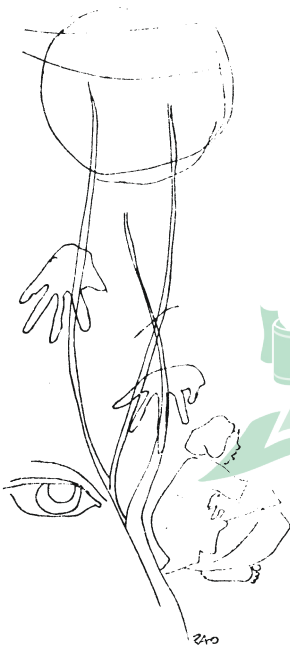
# काया, माया....!
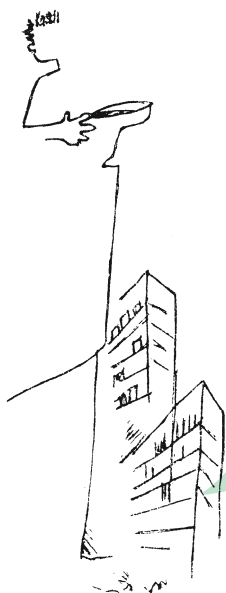
वह गृहस्थ

जिसके पास

कौड़ी भी नहीं है

कौड़ी का नहीं है,

वह श्रमण

जिसके पास

कौड़ी भी है

कौड़ी का नहीं है

एक की शोभा

माया है

राग-रंग

और एक की

मात्र काया

त्याग-संग।

❑❑❑

# गिरगिट ......!

जिस वक्ता में

धन-कंचन की आस

और

पाद-पूजन की प्यास

जीवित है,

वह

जनता का जमघट देख

अवसरवादी बनता है

आगम के भाल पर

घूँघट लाता है

कथन का ढँग

बदल देता है,

जैसे

झट से

अपना रंग

बदल लेता है

गिरगिट।

❑❑❑
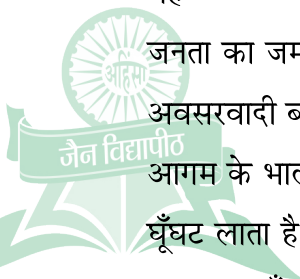
# चिन्ता नहीं, चिन्तन

मानस का कूल है

समता का प्रकाश

अन्तिम विकास

तमसता का विलास

अन्तिम..... हास.....।

परस्पर प्रतिकूल

दो तत्त्व

एक बिन्दु पर स्थित हैं

दोनों शुभ्र! बाहर से

क्षीर-नीर-विवेक,

धीर.....गम्भीर...एक टेक

जीवन लक्ष्य की ओर

बढ़ रहा है इनका

एक का

तत्त्व-चिन्तन के साथ

और एक का

विषय-चिन्ता के साथ

एक साधु है

एक स्वादु.....।

❑❑❑
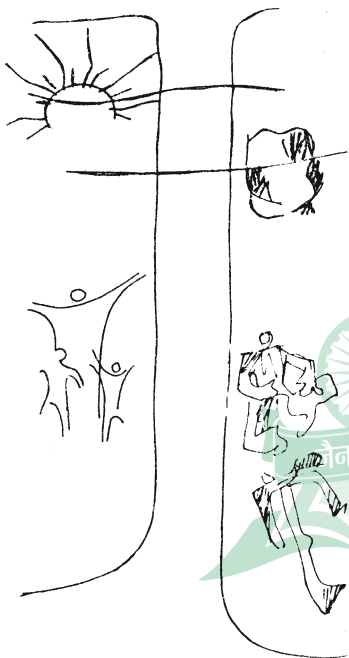
# दयालु पंजे......!

खर-नखर-दार
जिसके पंजे हैं
कभी चूहों का
शिकार खेलती है
कभी प्राण प्यारे
संतान झेलती है
जिन पंजों में
प्यार पलता है
उन्हीं पंजों में
काल छलता है
ऐसा लगता है
किन्तु पंजे आप
हिंसक हैं, न अहिंसक
प्राण का पलना
काल का छलना
यह अन्तर घटना है
बाहर अभिव्यक्ति है
तरंग पंक्ति है
घटना का घटक
अन्दर बैठा है
अव्यक्त-व्यक्ति है वह,
उसी पर आधारित है यह
वही विश्व को बनाता भुक्ति
वही दिलाता विश्व को मुक्ति
हे! भोक्ता पुरुष
स्वयं का भोग कब करेगा?
निश्छल योग कब धरेगा?

❑❑❑

# प्रार्थना और....!

हे परमात्मन्!

यह सब

आपके प्रसाद का ही

परिपाक है पावन,

कि

पाँच खण्ड का प्रासाद

.......पास है

अप्सरा-सी भी प्यारी पत्नि

प्रमदा होकर भी

पति की सेवा में

अप्रमदा है प्रतिपल!

प्राण-प्यारे दो-दो पुत्र

भोग, उपभोग, सम्पदा!!

सम्पन्न हूँ..... सानन्द.....

किन्तु

एक ही आकुलता है

कि

पड़ौसी का

दस खण्ड का महाभवन!

मन में खटकता है रात-दिन.....।

❑❑❑

# कम-बख्त......!
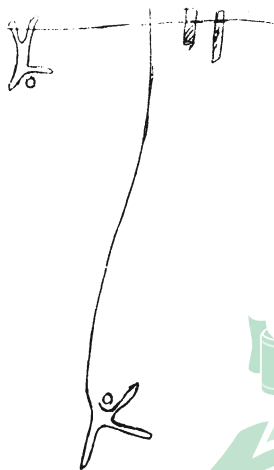
कोई हरकत नहीं है

हरगिज कह सकता हूँ

यह हकीकत है

कि

हर-वक्त

हर व्यक्ति का दिमाग

चलता तो है।

यदि संयत हो तो

वरदान होता है

सुख-संपादन में

एक तान होता है

किन्तु

विषयों का गुलाम हो तो

.........और बे-लगाम हो तो

कमबख्त! खतरनाक

शैतान होता है!

❑❑❑
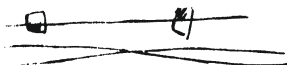
# जलप्रपात.....!
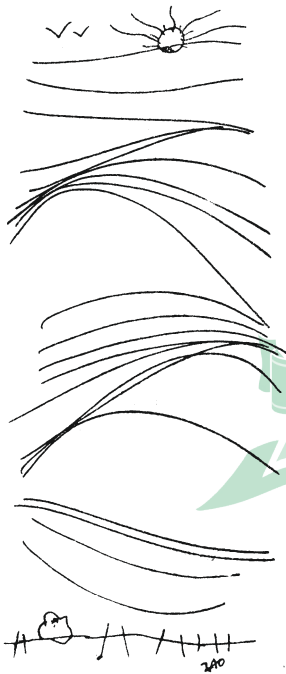
पक्षपात.....।

यह एक ऐसा

जलप्रपात है

जहाँ पर

सत्य की सजीव माटी

टिक नहीं सकती

..... बह जाती

पता नहीं कहाँ?

..... वह जाती

और असत्य के अनगढ़

विशाल पाषाणखण्ड

अधगड़े, टेड़े, मेड़े

अपनी धुन पर अड़े

शोभित होते.....।

❑❑❑

# दिल की माँग.....!
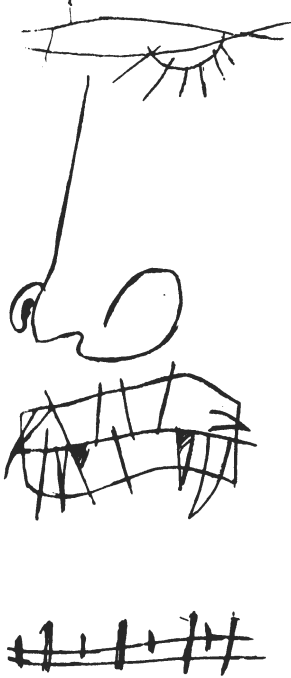
वीतराग का

दरस दूर रहा

हाय रे! आज

शुद्ध-राग का

परस भी कहाँ है?

सुधा-पीयूष की

क्या कथा कहूँ

शुद्ध विष भी आज

नहीं मिलता.....।

रावण का अभिमान

अच्छा लगता है

किन्तु

राम का नाम लेना

इस युग की दीनता

सुहाती नहीं

इस दिल को..... ।

❑❑❑

# धर्मयुग....!

यह युग

अप्रत्याशित

आगे बढ़ चुका है बहुत दूर

और!

धर्म वह

बहुत..... दूर.....

पीछे रह चुका है

अन्यथा!

पत्रिका का नाम

'धर्मयुग'

क्यों पड़ा यह?

❑❑❑

# रंगीन व्यंग

बालक और पालक
दो दर्शक हैं
हरित-भरित
मनहर परिसर है
सरवर तट है
श्वास-श्वास पर
तरंग का
प्रवास चल रहा है
अंतरंग गा रहा है
तरंग-रंग
भा रहा है
तभी तो
बालक का प्रतिपल
प्रयास चल रहा है
बहिरंग जा रहा है
तरंग पकड़ने,
और निस्संग तट में
फेन का बहाना है
हास चल रहा है?
या उपहास चल रहा है?
बालक पर क्या? पालक पर
पता नहीं किस पर?

❑❑❑

# कदम फूल, कलम शूल

इस युग में भी
सतयुग-सा
सुधार तो हुआ है
पर लगता है
उधार हुआ है,
अन्यथा
कभी का हुआ होता
उद्धार.....।
प्रभु के कदमों पर
चलने वाले कदम कम नहीं हैं
उन कदमों में
मखमल मुलायम
अच्छी अहिंसा पलती है
साथ ही साथ
उन कलमों में
हिंसा की दुगुणी-ज्वाला जलती है
इस युग में भी
सतयुग-सा
सुधार तो हुआ है
पर लगता है
उधार हुआ है।

❑❑❑

# अधर के बोल

सरस सलिल से
भरे हुए हो
कलुष कलिल से
परे हुए हो
इस धरती से
बहुत दूर हो तुम!
शुद्ध शून्य में
जलधर होकर
अधर डोल रहे
इधर यह मयूर
चिर प्रतीक्षित है
आपकी इंगन-कृपा से
दीक्षित है.....।

ऊर्ध्वमुखी हो
जिजीविषा इस की
बलवती है महती
तृषातुरा है
आज तक इस के
कायिक आत्मिक पक्ष
अमृत के बदले
..........?
जहर तौल रहे
तभी तो
अंग-अंग से इसके
समग्र सत्व से
नीलिमा फूट रही है
इसलिए इसे
जोर शोर से
गरजो, घुमड़-घुमड़ कर
सम्बोधित करो!
सुधा वर्षण से
शान्त शुद्ध
परमहंस बना दो इसे
विलम्ब मत करो अब.....।
ऐसे इसके
अपनी भाषा में
शुष्क नीलम
अधर बोल रहे।

❑❑❑

## खण्ड पाँच
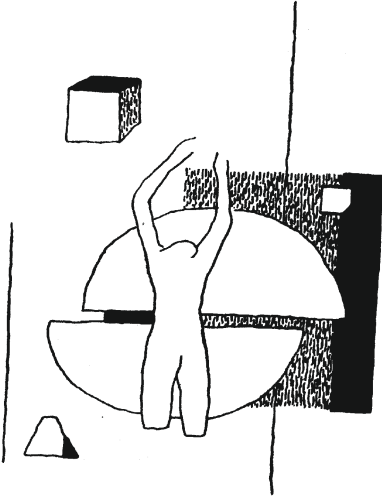
# जीने की विधा

मरने की विधाएँ हैं–दुर्घटना से, बीमारी से, हत्या से, आत्महत्या से। मगर इन सब के ऊपर है वह मरण जो समाधि-मरण कहलाता है। ठीक इसी तरह जीने की कई शैलियाँ हैं संसार में। मजदूरी, नौकरी, धंधा, कृषिकर या चोरी/डाका डालकर मगर जीने की सर्वोत्तम विधा कुछ और ही है। उसे खोजें/ समझें/जानें। वह इन कविताओं में भी हो सकती है; कविताओं के लेखन/वाचन में भी हो सकती है।

आप प्रयास भर करें, करते चलें या पहले इसी खण्ड की कविता 'किस साँचे में ढलूँ' पढ़ लें, आपका पथ सहज हो जायेगा। आप प्रश्न नहीं करेंगे फिर, बस; जीने की विधा पर केन्द्रित होने लगेंगे।

# भू-चुम्बी द्वार...!
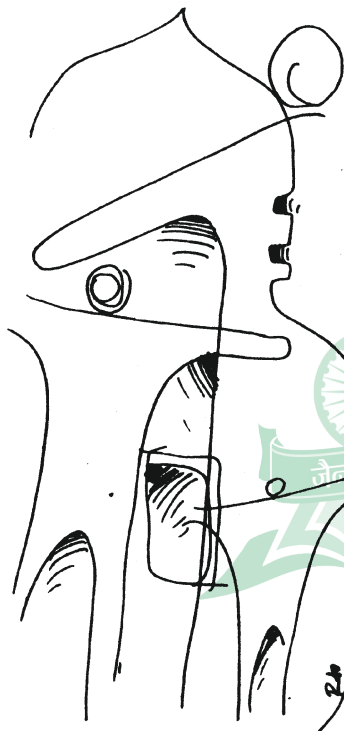
प्रभु ३के

विभु त्रिभुवन के

निकट जाना चाहते हो तुम.....।

उस मंदिर में जाने

टिकट पाना चाहते हो तुम.....।

वहाँ जाना बहुत विकट है

मानापमान का

अवसान! अनिवार्य है,

सर्वप्रथम.....।

वहाँ विराजमान हैं भगवान!

जिस मंदिर का

चूल/शिखर!

गगन चूम रहा है

और प्रवेश द्वार.......

धरती सूँघ रहा है

वहाँ जाना बहुत विकट है।

❑❑❑

# मोम बनूँ मैं...
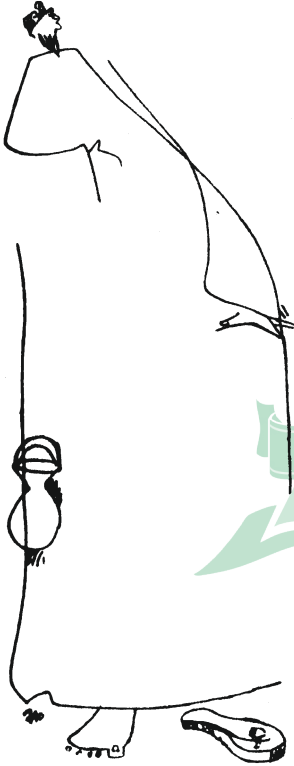
वरदहस्त जो रहा है
इस मस्तक पर
हे गुरुवर!
कठिन से कठिनतर
पाषाण-हृदय भी
मृदुल मोम हो गए,
दुःख की आग बरसाते
प्रचण्ड प्रभाकर भी
शरद सोम हो गए
विरोध की ज्वाला से जलते
विलोम वातावरण भी
अनुलोम हो गए
चेतना की समग्र सत्ता
भय से संकोचित, मूर्च्छित थी आज
तक
अब वह अभय-जागृत
पुलकित रोम-रोम हो गए
प्रति-धाम से
प्रति-नाम से
मधुर-ध्वनि की तरंग आ रही है
श्रवणों तक
बस! वह सब
सुखद ओम् हो गए।

❑❑❑

# कसरत......!

हमें यह

गुरु मन्त्र मिला है

कि

किसी भी आयाम से

प्राणों को पीड़ा होती हो

वह आयाम!

हिंसा है.....

चाहे प्राणायाम हो

या

बौद्धिक आयाम!!

यानी!

सब आयामों का

उपराम होना ही

अहिंसा है

अपरनाम अनन्त-आराम।

❑❑❑

# कोहरा

पक्षपात.....।

यह एक ऐसा

गहरा गहरा

कोहरा है

जिसे

प्रभाकर की प्रखर प्रखरतर

किरणें तक

चीर नहीं सकतीं

पथ पर चलता पथिक

सहचर साथी

उसका वह

फिर भला

कैसे दिख सकता है

सुन्दर सुन्दर-सा

चेहरा गहरा।

❑❑❑

# साहित्य

हित से जो

युक्त समन्वित होता है

वह सहित माना है

और

सहित का भाव ही

साहित्य-बाना है

यानी!

जिसके

अवलोकन से

सुख का संपादन हो

सही साहित्य वही है.....।

❑❑❑

# हुंकार, अहं का....
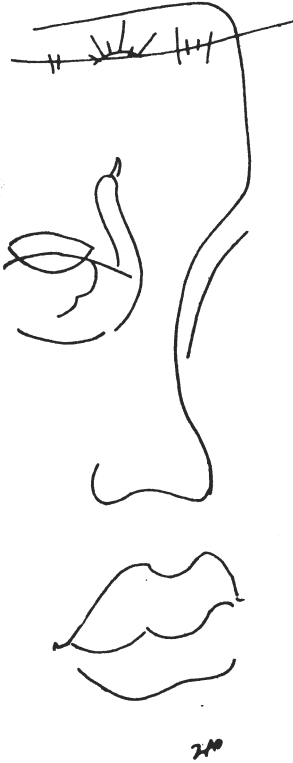
कृति रहे

संस्कृति रहे

चिरकाल तक

मात्र जीवित!

सहज प्रकृति का

शृंगार-श्रीकार

मनहर आकार ले

जिसमें आकृत होता है,

कर्ता न रहे

विश्व के सम्मुख

विषम विकृति का

अपार संसार

अहंकार का हुंकार ले

जिसमें जागृत होता है

और हित........

.......... निराकृत होता है...

❑❑❑

# अवतार.....!

उतरा धरा पर
चिद्-विलास
मानव बन
करनी कर
मानव-पन......पा
मानव पनपा,
तू मान वही
मान प्रमाण का पात्र बना
पायी अन्तिम-शान्ति
विश्रान्ति
फिर वहाँ से लौटा कहाँ?
लौटना अशान्ति है
क्लान्ति, भटकन भ्रान्ति है
दुग्ध का विकास होता है
घृत का विलास होता है
घृत का लौटना किन्तु
दुग्ध के रूप में
सम्भव नहीं है।

❑❑❑

# कुछ करो ना.....!

प्रतिकूलता का
प्रतिकार नहीं करना वह
कायरता नहीं है
पुरुषार्थ–हीनता नहीं है
अपितु
पुरुष का परम–पुरुषार्थ
इसी पथ पर
गति–प्रगति पाता है
शत शत श्वान
श्वाँस लिए बिना
अपने–अपने स्वरों में
स्वागत करते हैं
पीछे से........।
पर!
मस्त चाल वाला
चाल बदल कर
मुड़कर देखता क्या
वह हाथी.....।

❑❑❑

# पंक्ति पद.....!
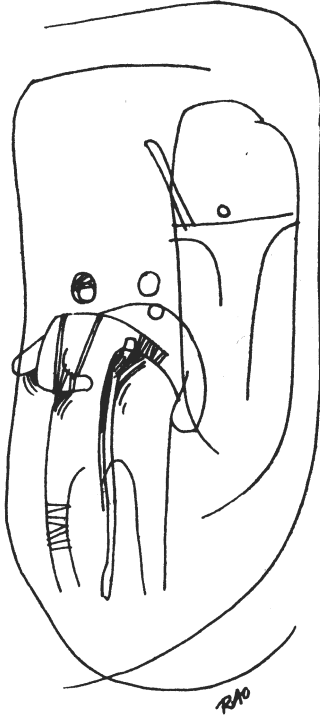
धर्म–कर्म से विमुख होकर

पापकर्म में प्रमुख होकर

अनुचित रूप से

धनार्जन कर

मान का भूखा बन

दान की अपेक्षा

समुचित रूप से

आवश्यक धन का अर्जन कर,

बिना दान भी

जीवन चलाना

पुण्य की निशानी है

कीचड़ में पद रखकर

लथ–पथ हो

निर्मल जल से

स्नान करने की अपेक्षा

कीचड़ की उपेक्षा कर

दूर रहना ही

बुद्धिमानी है।

❑❑❑

# प्रलय-काल.........!

अन्याय की उपासना कर
वासना का दास बनकर
धनिक बनने की अपेक्षा
न्याय-मार्ग का उपासक बन
धनिक नहीं बनना भी
श्रेष्ठतम है
किन्तु
अकर्मण्यता
मानव मात्र को
अभिशाप है
महापाप है
कारण!
अन्याय से जीवन
बदनाम होता है
न्याय से नाम होता है
जीवन कृतकाम होता है
जबकि!
अकर्मण्य की छाँव में
जीवन
तमाम होता है।

❑❑❑

# पेट से पेटी....
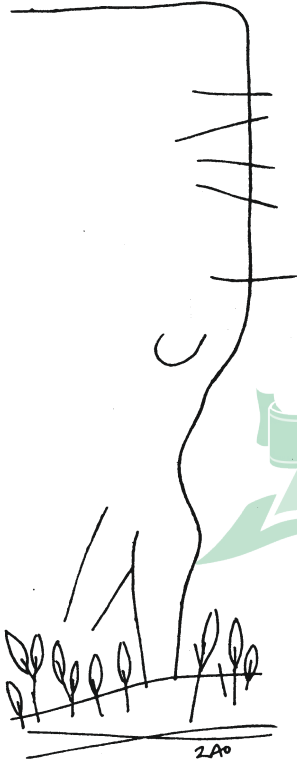
अन्न-पान से
पेट की भूख
जब शान्त होती है
तब जागती है
रसना की भूख,
रस का मूल्यांकन!
नासा सुवास माँगती है
ललित-लावण्य की ओर
आँखें भागतीं हैं,
श्रवणा उतारती
स्वरों की आरती है
मन मस्ताना होता है
सब का कपताना होता है
आविष्कार कपाट का होता है
अन्यथा
फण-कुचली घायल नांगिन-सी
बिल से बाहर
निकलती नहीं है
ये इन्द्रिय-नागिन!

❑❑❑

# किस साँचे में ढलूँ.....!
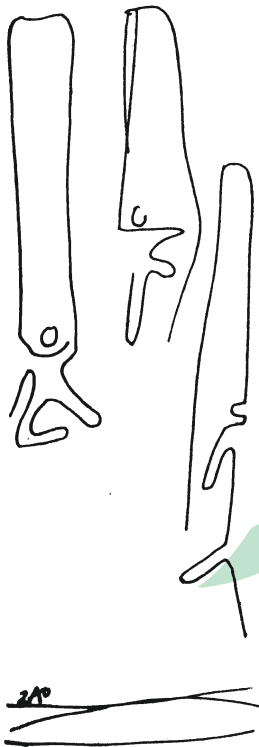
व्यक्तित्व की सत्ता से
ऊब गया है
कर्त्तव्य की सत्ता में
डूब गया है
मौन-मुस्कान
पर्याप्त नहीं
आपके मुख से
अब यह
वचना चाहता है
परिणाम-परिधि से
अभिराम अवधि से
अब यह
बचना चाहता है
रूप-सरस से
गन्ध-परस से
रहित.....परे
अपनी अब यह
रचना चाहता है
संग -रहित
जंग-रहित
शुद्ध लोहा
ध्यान-दाह में
अब यह
.....पचना चाहता है।

❑❑❑
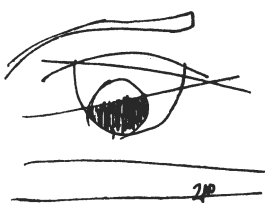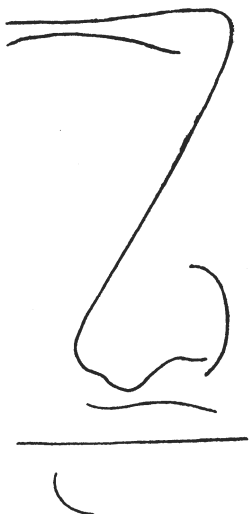
# कैंची नहीं, सुई बन

चिर से बिछुड़े
दो सज्जन मिलते हैं
वृद्धावस्था में
परस्पर प्रेम-वार्ता होती है
गले से गले मिलते हैं
गद्‌गद कण्ठ से,
एक ने पूछा एक से
तुमने क्या साधना की है
पर के लिए और अपने लिए?
उत्तर मिलता है
द्वैत से अद्वैत की ओर बढ़ना हो
टूटे दो टुकड़ों को
एक रूप देना हो
तो सुनो
सुई होना सीखा है!

फिर दूसरे ने भी पूछा
इस दीर्घ जीवन में
ऐसी कौन-सी साधना की तुमने
फलस्वरूप सब के स्नेह-भाजन हो,
उत्तर मिलता है
कि
कर्म के उदय में
जो कुछ होना सो होना है
सो धरा-सा
जरा होना सीखा है,
दूसरों के सम्मुख
अपनी वेदना पर
भला! रोना ना सीखा है
हाँ!
दूसरा आ अपनी
व्यथा-कथा
सुनाता हो, रोता हो
यह मन भी व्यथित हो रोता है
और तत्काल
उसके आँसू
जरा धोना सीखा है।

❑❑❑
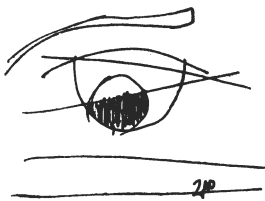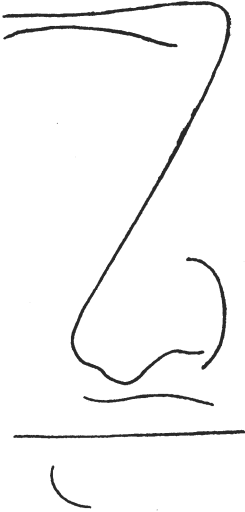
# शव नहीं, शिव बनूँ
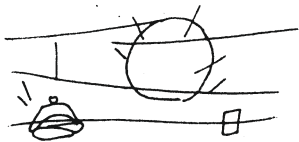
इस युग के
दो मानव
अपने आप को
खोना चाहते हैं
जिनमें एक
भोग- राग को
मद्य-पान को
चुनता है
और एक
योग-त्याग को
वन्द्य-ध्यान को
धुनता है,
कुछ ही क्षणों में
दोनों होते
विकल्पों से मुक्त
फिर क्या कहना ?
एक शव के समान
निरा पड़ा है
और एक
शिव के समान
भरा है (खरा उतरा है)

❑❑❑